जीवन रक्षक दवाइओं से वंचित हैं मरीज़

भारत डोगरा

सरकारी अस्पतालों व स्वास्थ्य केंद्रों में ज़रूरी दवाइयां निशुल्क उपलब्ध करवाने का केंद्र सरकार का वायदा देश के अधिकांश क्षेत्रों में महज़ वायदा ही बन कर रह गया है। वैसे कुछ राज्यों, जैसे तमिलनाडु और केरल, ने इस क्षेत्र में पहले भी अपने स्तर पर अच्छा कार्य किया था और अब राजस्थान में भी सराहनीय कार्य हुआ है। पर देश के बड़े हिस्से में अभी सरकार की योजना किसी असरदार रूप से नज़र नहीं आ रही है। इसकी एक मुख्य वजह यह है कि केंद्र सरकार ने इस योजना को आगे ले जाने के लिए बजट प्रावधान न के बराबर किया है।

दवाइयों के निशुल्क वितरण के लिए यह ज़रूरी है कि पहले सस्ती जेनेरिक दवाइयों की केंद्रीय खरीद की एक बड़ी व्यवस्था स्थापित की जाए। पिछले अनुभव से स्पष्ट हो गया है कि इस तरह अधिकांश जीवन रक्षक दवाइयां बाज़ार भाव की अपेक्षा बहुत सस्ती कीमत पर खरीदी जा सकती हैं। उसके बाद इन दवाइयों को सरकारी अस्पतालों और स्वास्थ्य केंद्रों में निशुल्क उपलब्ध करवाना अपेक्षाकृत कम बजट में संभव होगा।

केंद्र सरकार इस पहल में जो देरी कर रही है वह उन करोड़ों मरीज़ों के लिए बहुत महंगा साबित हो रहा है जो ज़रूरी दवाइओं से वंचित है या महंगी दवाइयों के लिए ब्याज़ पर कर्ज़ लेने को मजबूर हैं।

चारु गर्ग व अनूप करन के एक अध्ययन के अनुसार मात्र एक वर्ष में 3 करोड़ 20 लाख व्यक्ति स्वास्थ्य सेवाओं के अधिक खर्च के कारण गरीबी की रेखा के नीचे धकेले गए। इससे कुछ पहले वान डोरस्लेअर, ओडोनेल व रैनन-एलिया व अन्य के एक अध्ययन ने ऐसे लोगों की संख्या 3 करोड़ 70 लाख आंकी थी।

विभिन्न अध्ययनों के अनुसार वैसे तो सरकारी व गैर-सरकारी दोनों तरह के अस्पतालों में इलाज पहले से महंगा हुआ है, पर कुल मिलाकर निजी क्षेत्र के अस्पतालों में इलाज सरकारी अस्पतालों से कहीं अधिक महंगा है। अस्पतालों व डॉक्टरों की फीस के अतिरिक्त दवाइयों की कीमत बहुत अधिक बढ़ी है। विभिन्न तरह के इलाज के खर्च में सबसे बड़ा हिस्सा दवाइयों का ही है। पेटेंट कानूनों में बदलाव के बाद कीमतें तेज़ी से बढ़ रही हैं। साथ ही साथ दवा कीमतों पर नियंत्रण भी ढीला हो रहा है व बड़ी कंपनियों की मनमानी बढ़ रही है।

दवा उद्योग अपनी तरह का एक अलग ही उद्योग है जिसमें उपभोक्ता, मरीज़ व उसके परिवार के सदस्य के हितों की रक्षा करना बहुत ज़रूरी है। इसके लिए उद्योग का उचित व न्यायसंगत नियमन करना बहुत ज़रूरी है। अनेक धनी, विकसित देशों में कुछ हद तक मरीज़ों की दवा की व्यवस्था सरकार की ओर से, सामाजिक बीमा आदि के माध्यम से की जाती है। पर हमारे देश में स्थिति इससे बहुत भिन्न है।

हमारे देश में स्वास्थ्य, मुख्य रूप से इलाज पर होने वाला 83 प्रतिशत खर्च मरीज़ों के परिवार व सगे-सम्बंधी करते हैं व स्वास्थ्य पर मात्र 17 प्रतिशत खर्च सरकार करती है। मरीज़ों का लगभग 70 प्रतिशत खर्च दवाइयों पर होता है। देश में व्यापक स्तर पर गरीबी है और लोगों की क्रय शक्ति बहुत कम है। दुनिया में सबसे अधिक संख्या में ज़रूरी दवाइयों से वंचित

लोग भारत में हैं और विश्व बैंक के एक अध्ययन के अनुसार ऐसे लोगों की संख्या 64 करोड़ है।

कड़वी सच्चाई तो यह है कि हमारे देश का दवा उद्योग ठीक से नियमित नहीं हो रहा है। इसका मूल आधार मरीज़ों की ज़रूरत नहीं है अपितु मोटा मुनाफा है। इसके अतिरिक्त इसमें लापरवाही भी बहुत है।

सबसे सस्ती दवाइयां जेनेरिक रूप में उपलब्ध होती है जो प्रायः नहीं लिखी जाती है। इसकी एक मुख्य वजह यह है कि दवा कंपनियां डॉक्टरों को महंगी दवा लिखने के लिए कई प्रलोभन देती हैं। डॉक्टर प्रायः कंपनियों के प्रतिनिधियों की बात को उनकी दवा की कीमत व गुणवत्ता की पर्याप्त जांच-पड़ताल के बिना ही स्वीकार कर लेते हैं।

दवा की कीमत का उसके उत्पादन की लागत से कोई रिश्ता नहीं रह गया है। मनमानी कीमत वसूली जा रही है। यदि यह देखा जाए कि थोक बिक्री के वक्त या बड़े पैमाने पर सरकारी खरीद के समय किसी दवा की कितनी कीमत तय की जाती है (इसमें भी कुछ मुनाफा तो शामिल होता ही है) और इसकी तुलना बाज़ार में मरीज़ से वसूली गई कीमत से की जाए तो कई गुना का फर्क नज़र आता है।

वर्ष 2012 में जो राष्ट्रीय दवा मूल्य निर्धारण नीति अपनाई गई है, उससे कोई उम्मीद नहीं बंधती है। इससे कुछ दवाइयों की कीमतें ज़रूर कम हुई है, पर भविष्य में कीमत बढ़ने की संभावना बनी हुई है व साथ ही बहुत-सी कॉम्बीनेशन (मिश्रित) दवाइयों को तो इस नियंत्रण के दायरे से बाहर रखा गया है। दवा मूल्य निर्धारण का जो नया तरीका सुझाया गया है उसका कोई तर्कसंगत आधार नहीं है। इस तरह बुनियादी समस्याएं तो बरकरार हैं।

मौजूदा अव्यवस्था का एक पक्ष यह है कि कई ऐसी खतरनाक दवाइयां भी बाज़ार में धड़ल्ले से बिक रही हैं जिनके बारे में कई चेतावनियां दी जा चुकी हैं कि ये सुरक्षित नहीं हैं। मसलन, एनाल्जिन को हाल ही में भारतीय दवा नियंत्रक ने प्रतिबंधित भी किया, पर कुछ ही दिनों बाद यह प्रतिबंध वापस ले लिया गया। हैरानी की बात है कि यह दवा कुछ दिन पहले खतरनाक पाई गई थी तो अब इसका खतरा दूर कैसे हो गया? यह सवाल उठा कि कहीं एनाल्जिन पर प्रतिबंध इस कारण तो नहीं हटा कि इसकी वार्षिक बिक्री 100 करोड़ रुपए है और दवा उद्योग का दबाव था कि बिक्री जारी रहे। पर यदि इसके दुष्परिणाम गंभीर हैं तो क्या दवा लेने वाले मरीज़ों के लिए गंभीर खतरा नहीं उत्पन्न होता है। अनेक देश इस दवा को इस आधार पर प्रतिबंधित कर चुके हैं कि इसके सेवन से जीवन को खतरे में डालने वाली ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है जिसमें शरीर की रक्षा करने वाली कोशिकाएं कम होने लगती हैं।

इस तरह आज बाज़ार में बहुत-सी खतरनाक दवाइयां बिक रही हैं। विशेषकर कॉम्बीनेशन के रूप में इनकी बिक्री अधिक है। दूसरी ओर, जीवन रक्षक दवाइयां करोड़ों मरीज़ों को महंगाई व गरीबी के कारण नहीं मिल रही हैं।

दवा उद्योग के महत्त्व को देखते हुए इसके उचित नियमन के प्रयास और मज़बूत होने चाहिए। साथ में ज़रूरी दवाइयों के उत्पादन व उपलब्धि में सार्वजनिक क्षेत्र को स्वयं भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***

वर्ग पहेली 108 का हल

नी	ल्स	बो	र			पी	प	ल
यॉ		सॉ		प्र	पा	त		की
न	म	न	को	ण		ल	ह	र
	हा		य				र	
र	वि		ल	व	क		सिं	ह
	स्फो				मा		गा	
ग	ट	र		अ	न	व	र	त
णि		क	टा	क्ष		ज़		र
त	त्स	म			प	न	च	क्की